



आश्रय सेवा संस्था

संस्कृति विभाग, उ.प्र.



भारत रत्न महामना पं. मदनमोहन मालवीय जयन्ती पर
**महामना के सपूतों का सम्मान एवं
कवि सम्मेलन : सृजन धारा**

दिनांक : 25 दिसम्बर, 2020, शुक्रवार • समय : दोपहर 1:00 बजे से

स्थान : सुबह-ए-बनारस मंच, असि घाट

चित्र एवं अभिलेख प्रदर्शनी : महामना की जीवन यात्रा

(प्रातः 10 बजे से सायं 5 बजे तक)

आप सादर आमंत्रित हैं

डॉ. वीरेंद्र प्रताप सिंह सचिव / संयोजक आश्रय सेवा संस्था, वाराणसी

सहयोग : क्षेत्रीय अभिलेखागार, वाराणसी, संस्कृति विभाग, उ.प्र. • सुबह-ए-बनारस आनन्द कानन, वाराणसी



भारतरत्न पं० मदन मोहन मालवीय जी

भारत-रत्न महामना पं० मदन मोहन
मालवीय जी का चित्र

महामना पं० मदन मोहन मालवीय का जीवन-परिचय

(1861-1946)

भारतीय ज्ञान-सम्पदा व सांस्कृतिक धरोहर की प्रतिमूर्ति महामना पं० मदन मोहन मालवीय मध्य भारत के मालवा के निवासी पं० प्रेमधर के पौत्र तथा पं० विष्णु प्रसाद के प्रपौत्र थे। पं० प्रेमधर जी संस्कृत के मूर्धन्य विद्वान् थे। पं० मदन मोहन मालवीय के पूर्वजों के तीर्थराज प्रयाग (इलाहाबाद) में बस जाने का मन बनाया, जबकि उनके परिवार के कुछ सदस्यों ने पड़ोसी शहर मीरजापुर को अपना निवास स्थान बनाया। पं० प्रेमधर जी भागवत की कथा को बड़े सरस ढंग से वाचन व प्रवचन करते थे। मदन मोहन अपने पिता पं० ब्रजनाथ जी के छः पुत्र-पुत्रियों में सबसे अधिक गुणी, निपुण एवं मेधावी रहे। उनका जन्म 25 दिसम्बर, 1861 ई० (हिन्दू पंचाङ्ग के अनुसार पौष कृष्ण अष्टमी, बुधवार, सं० 1918 विक्रम) को प्रयाग के लाल डिग्गी मुहल्ले (भारती भवन, इलाहाबाद) में हुआ था। उनकी माता श्रीमती मोना देवी, अत्यन्त धर्मनिष्ठ एवं निर्मल ममतामयी देवी रही। मदन मोहन की प्रतिभा में अनेक चमत्कारी गुण रहे, जिनके कारण उन्होंने ऐसे सपने देखे जो भारत-निर्माण के साथ-साथ मानवता के लिए श्रेष्ठ आदर्श सिद्ध हुए। इन गुणों के कारण ही उन्हें महामना के नाम-रूप में जाना-पहचाना जाता है।

शिक्षा :-

महामना की प्रारंभिक शिक्षा प्रयाग के महाजनी पाठशाला में 5 वर्ष की आयु में आरम्भ हुई थी। पं० मदन मोहन मालवीय जी ने अपने व्यवहार व चरित्र में हिन्दू संस्कारों को भली-भांति आत्मसात् किया था। इसी के फलस्वरूप वे जब भी प्रातःकाल पाठशाला को जाते तो प्रथमतः हनुमान-मन्दिर में जाकर प्रणामाञ्जलि के साथ यह प्रार्थना अवश्य दुहराते थे :

मनोत्रवं मारुत तुल्य वेगं जितेन्द्रियं बुद्धिमतां वरिष्ठम्

वातात्मजं वानरयूथं मुख्यं श्री रामदूतं शिरसा नमामि ।

श्री कृष्णजन्माष्टमी के महोत्सव को वे सच्च मन व हृदय से धूमधाम के साथ मनाने थे। 15 वर्ष के किशोर वय में ही उन्होंने काव्य रचना आरम्भ कर दी थी जिसे वे अपने उपनाम 'मकरन्द' से पहचाने जाते रहे। मैट्रिक परीक्षा सन् 1864 में प्रयाग राजकीय हाईस्कूल से उत्तीर्ण कर, म्योर सेण्ट्रल कॉलेज में दाखिल हुए।

1

भारत-रत्न महामना पं० मदन मोहन
मालवीय जी का जीवन परिचय

विद्यालय व कालेज दोनों जगहों पर उन्होंने अनेक सांस्कृतिक व सामाजिक आयोजनों में सहभागिता की। सन् 1880 ई० में उन्होंने 'हिन्दू समाज' की स्थापना की।

विवाह :-

उनका विवाह मीरजापुर के पं० नन्दलाल जी की पुत्री कुन्दन देवी के साथ 16 वर्ष की आयु में हुआ था।

सामाजिक कार्य :-

पं० मदन मोहन मालवीय जी कई संस्थाओं के संस्थापक तथा कई पत्रिकाओं के सम्पादक रहे। इस रूप में वे हिन्दू आदर्शों, सनातन धर्म तथा संस्कारों के पालन द्वारा राष्ट्र-निर्माण की पहल की थी। इस दिशा में 'प्रयाग हिन्दू सभा' की स्थापना कर समसामयिक समस्याओं के संबंध में विचार व्यक्त करते रहे। सन् 1884 ई० में वे हिन्दी उद्धारिणी प्रतिनिधि सभा के सदस्य, सन् 1885 ई० में 'इण्डियन यूनियन' का सम्पादन, सन् 1887 ई० में 'भारत-धर्म महामण्डल' की स्थापना कर सनातन धर्म के प्रचार का कार्य किया। सन् 1889 ई० में 'हिन्दुस्तान' का सम्पादन, 1891 ई० में 'इण्डियन ओपीनियन' का सम्पादन कर उन्होंने पत्रकारिता को नई दिशा दी। इसके साथ ही सन् 1891 ई० में इलाहाबाद हाईकोर्ट में वकालत करते हुए अनेक महत्वपूर्ण व विशिष्ट मामलों में अपना लोहा मनवाया था। सन् 1913 ई० में वकालत छोड़ दी और राष्ट्र की सेवा का व्रत लिया ताकि राष्ट्र को स्वाधीन देख सकें।

यही नहीं वे आरम्भ से ही विद्यार्थियों के जीवन-शैली को सुधारने की दिशा में उनके रहन-सहन हेतु छात्रावास का निर्माण कराया। सन् 1889 ई० में एक पुस्तकालय भी स्थापित किया।

इलाहाबाद में म्युनिस्पैलिटी के सदस्य रहकर सन् 1916 तक सहयोग किया। इसके साथ ही भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के सदस्य के रूप में भी कार्य किया।

सन् 1907 ई० में बसन्त पंचमी के शुभ अवसर पर एक साप्ताहिक हिन्दी पत्रिका 'अभ्युदय' नाम से आरम्भ की, साथ ही अंग्रेजी पत्र 'लीडर' के साथ भी जुड़े रहे।

पिता की मृत्यु के बाद पंडित जी देश-सेवा के कार्य को अधिक महत्व दिया। 1919 ई० में 'कुम्भ-मेले' के अवसर पर प्रयाग में 'प्रयाग सेवा समिति' बनाई ताकि तीर्थयात्रियों की देखभाल हो सके। इसके बाद निरन्तर वे स्वार्थरहित कार्यों

की ओर अग्रसर हुए तथा महाभारत, महाकाव्य के निम्नलिखित उदाहरण को अपना आदर्श जीवन बनाया –

न त्वहं कामये राज्यं न स्वर्गं न पुनर्भवम् ।

कामये दुःख तप्तानाम् प्राणिनामार्तनाशनम् ॥

उनका यह आदर्श बाद में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की पहचान बनी।

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय का निर्माण :-

पं० मदन मोहन मालवीय जी के व्यक्तित्व पर आयरिश महिला डॉ० एनीबेसेण्ट का अभूतपूर्व प्रभाव पड़ा, जो हिन्दुस्तान में शिक्षा के प्रचार-प्रसार हेतु दृढ़प्रतिज्ञ रहीं। वे वाराणसी नगर के कमच्छा नामक स्थान पर 'सेण्ट्रल हिन्दू कॉलेज' की स्थापना सन् 1889 ई० में की, जो बाद में चलकर हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना का केन्द्र बना। पंडित जी ने तत्कालीन बनारस के महाराज श्री प्रभुनारायण सिंह की सहायता से सन् 1904 ई० में 'बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय' की स्थापना का मन बनाया। सन् 1905 ई० में बनारस शहर के टाउन हाल मैदान की आमसभा में श्री डी०एन०महाजन की अध्यक्षता में एक प्रस्ताव पारित कराया।

सन् 1911 ई० में डॉ० एनीबेसेण्ट की सहायता से एक प्रस्तावना को मंजूरी दिलाई जो 28 नवम्बर 1911 ई० में एक 'सोसाइटी' का स्वरूप लिया। इस 'सोसायटी' का उद्देश्य 'दि बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी' की स्थापना करना था। 25 मार्च 1915 ई० में सर हरकोर्ट बटलर ने इम्पिरीयल लेजिस्लेटिव एसेम्बली में एक बिल लाया, जो 1 अक्टूबर सन् 1915 ई० को 'ऐक्ट' के रूप में मंजूर कर लिया गया।

4 फरवरी, सन् 1816 ई० (माघ शुक्ल प्रतिपदा, संवत् 1972) को 'दि बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी, की नींव डाल दी गई। इस अवसर पर एक भव्य आयोजन हुआ। जिसमें देश व नगर के अधिकाधिक गणमान्य लोग, महाराजगण उपस्थित रहे।

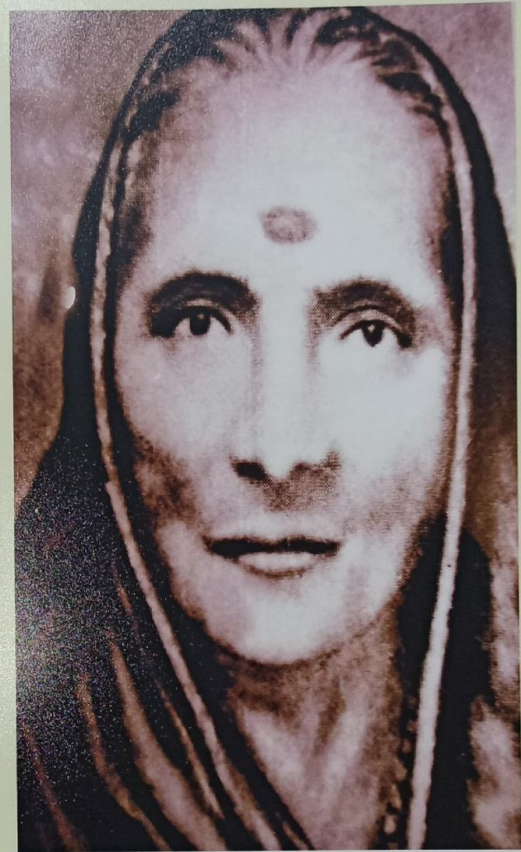
महामना पं० मदन मोहन मालवीयजी की जीवन झांकी

25 दिसम्बर	1861	प्रयाग में जन्म
सन्	1878	मिर्जापुर में कुन्दन देवीजी से विवाह
सन्	1884	कलकत्ता विश्वविद्यालय से बी०ए० परीक्षा में उत्तीर्ण
जुलाई	1884	इलाहाबाद जिला स्कूल में अध्यापक
दिसम्बर	1886	कलकत्ते में दादा भाई नौरोजी की अध्यक्षता में कांग्रेस का दूसरा अधिवेशन—कौंसिलों में प्रतिनिधित्व के प्रश्न पर भाषण
जुलाई	1887	कालाकांकर में "हिन्दोस्थान" पत्र का सम्पादन कार्य प्रारम्भ
सन्	1891	हिन्दोस्थान पत्र का सम्पादन छोड़कर प्रयाग में वकालत की पढ़ाई प्रारम्भ
सन्	1892	वकालत की परीक्षा पास करके जिला अदालत में वकालत प्रारम्भ
दिसम्बर	1893	प्रयाग हाई कोर्ट में वकालत
मार्च	1898	संयुक्त प्रान्त (उत्तर प्रदेश) के लेफ्टिनेंट गवर्नर को हिन्दी के सम्बन्ध में ज्ञापन
सन्	1902—1903	मालवीयजी के प्रयास से प्रयाग में हिन्दू बोर्डिंग हाउस का निर्माण
सन्	1904	हिन्दू विश्वविद्यालय स्थापना की योजना
सन्	1905	कांग्रेस अधिवेशन (बनारस) में इस योजना की घोषणा, सनातन धर्म महासभा के अधिवेशन में इसका प्रस्ताव पारित
सन्	1903—1912	प्रान्तीय कौंसिल की सदस्यता — मालवीयजी द्वारा कौंसिल में प्रान्त की महत्वपूर्ण सेवा
जनवरी	1906	कुम्भ के अवसर पर प्रयाग में मालवीयजी द्वारा आयोजित सनातन धर्म महासभा का अधिवेशन। उदार सनातन धर्म का प्रचार। काशी में भारतीय विश्वविद्यालय खोलने का निर्णय।
सन्	1907	मालवीयजी के सम्पादकत्व में "अभ्युदय" का सम्पादन, लोकतान्त्रिक सिद्धान्तों और उदार हिन्दू धर्म का प्रसार

सन्	1908	प्रांतीय राजनीतिक सम्मेलन (लखनऊ) के सभापति
सन्	1909	प्रयाग में मालवीयजी के सम्पादकत्व में "लीडर" पत्र का प्रकाशन
सन्	1910	का प्रेस ऐक्ट विरोध
अक्टूबर	1910	हिन्दी साहित्य सम्मेलन के प्रथम अधिवेशन में अध्यक्षीय भाषण
28 नवम्बर	1911	हिन्दू यूनिवर्सिटी सोसाइटी का गठन
दिसम्बर	1911	पचास वर्ष की आयु होने पर वकालत का त्याग, सारा जीवन राष्ट्र की सेवा में बिताने का दृढ़ संकल्प, काशी विश्वविद्यालय की स्थापना के लिए विशेष प्रयत्न करने का निर्णय
फरवरी	1915	मालवीयजी की अध्यक्षता में प्रयाग सेवा समिति का गठन
अक्टूबर	1915	काशी हिन्दू विश्वविद्यालय बिल पारित
4 फरवरी	1916	काशी हिन्दू विश्वविद्यालय का शिलान्यास समारोह
सन्	1918	सेवा समिति द्वारा स्काउट एसोसिएशन का गठन
दिसम्बर	1918	दिल्ली में कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशन की अध्यक्षता
फरवरी	1919	रौलेट बिल पर कौंसिल में बहस। कौंसिल से इस्तीफा।
19 अप्रैल	1919	बम्बई में मालवीयजी की अध्यक्षता में हिन्दी साहित्य सम्मेलन का अधिवेशन
सन्	1910-1920	भारतीय कौंसिल में सदस्यता तथा योगदान
16 दिसम्बर	1922	लाहौर में हिन्दू-मुस्लिम सौहार्द पर भाषण
जनवरी	1924	असेम्बली में मालवीयजी और जिना द्वारा इंडिपेंडेंट पार्टी का गठन। उसके बाद स्वराज्य पार्टी से मिलकर नेशनलिस्ट पार्टी का गठन।
अगस्त	1926	मालवीयजी और लाजपतराय के नेतृत्व में कांग्रेस इंडिपेंडेंट पार्टी का गठन
दिसम्बर	1929	काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के दीक्षान्त समारोह में दीक्षान्त

		भाषण। विद्यार्थियों को देश-सेवा और राष्ट्रीयता का उपदेश।
2 अप्रैल	1930	असेम्बली से इस्तीफा।
5 अप्रैल	1931	कानपुर में हिन्दू-मुस्लिम एकता पर भाषण
सन्	1931	महात्मा गांधी के साथ लन्दन में गोल मेज कान्फ्रेंस में भागीदारी
मार्च	1932	वाराणसी में मालवीयजी की अध्यक्षता में अखिल भारतीय स्वदेशी संघ का संगठन।
20 अप्रैल	1932	कांग्रेस का दिल्ली अधिवेशन। मनोनीत अध्यक्ष मालवीयजी की गिरफ्तारी।
अगस्त	1934	काशी में गांधीजी की सभा में हरिजनोद्धार पर भाषण
जनवरी	1936	प्रयाग में मालवीयजी के नेतृत्व में सनातन धर्म महासभा का अधिवेशन अन्त्यजोद्धार पर प्रस्ताव
सन्	1938	कायाकल्प
नवम्बर	1939	काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के आजीवन रेक्टर नियुक्त
जनवरी	1942	काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की रजत जयन्ती, गांधीजी का दीक्षान्त भाषण
12 नवम्बर	1946	निधन

Father & Mother of Malaviya Ji



मालवीय जी के माता-पिता

Family members



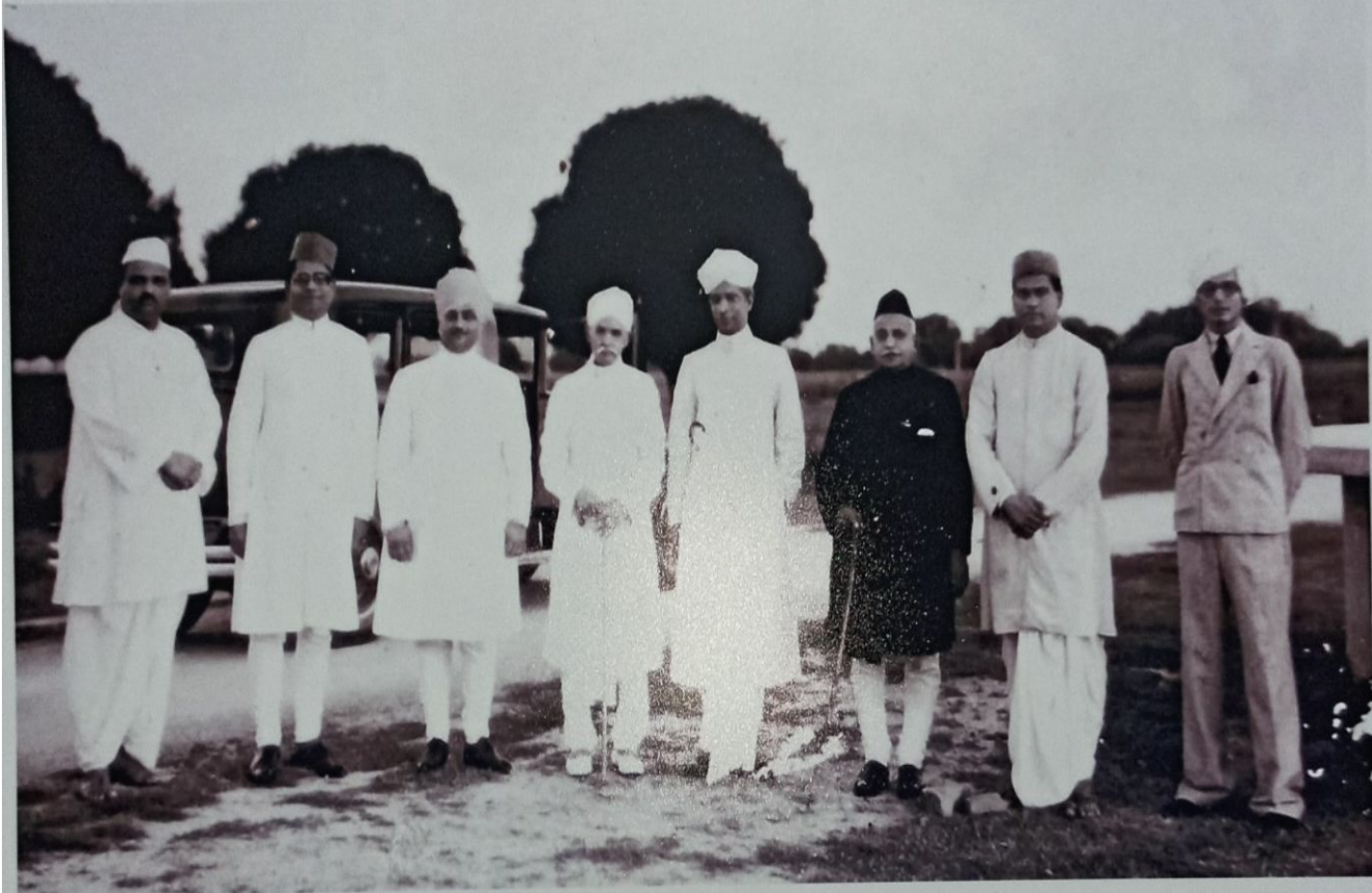
मालवीय जी के पारिवारिक सदस्य



बर्द और से - मुकुन्द (तीसरे पुत्र), रमाकान्त (ज्येष्ठ पुत्र), पूज्य मालवीयजी,
राधाकान्त (द्वितीय), गोविन्द (तृतीय), और नीचे - श्रीधर (रमाकान्तका पुत्र)।

मालवीय जी के पारिवारिक सदस्य

Malaviya Ji with Scholars



विद्वानों के साथ महामना

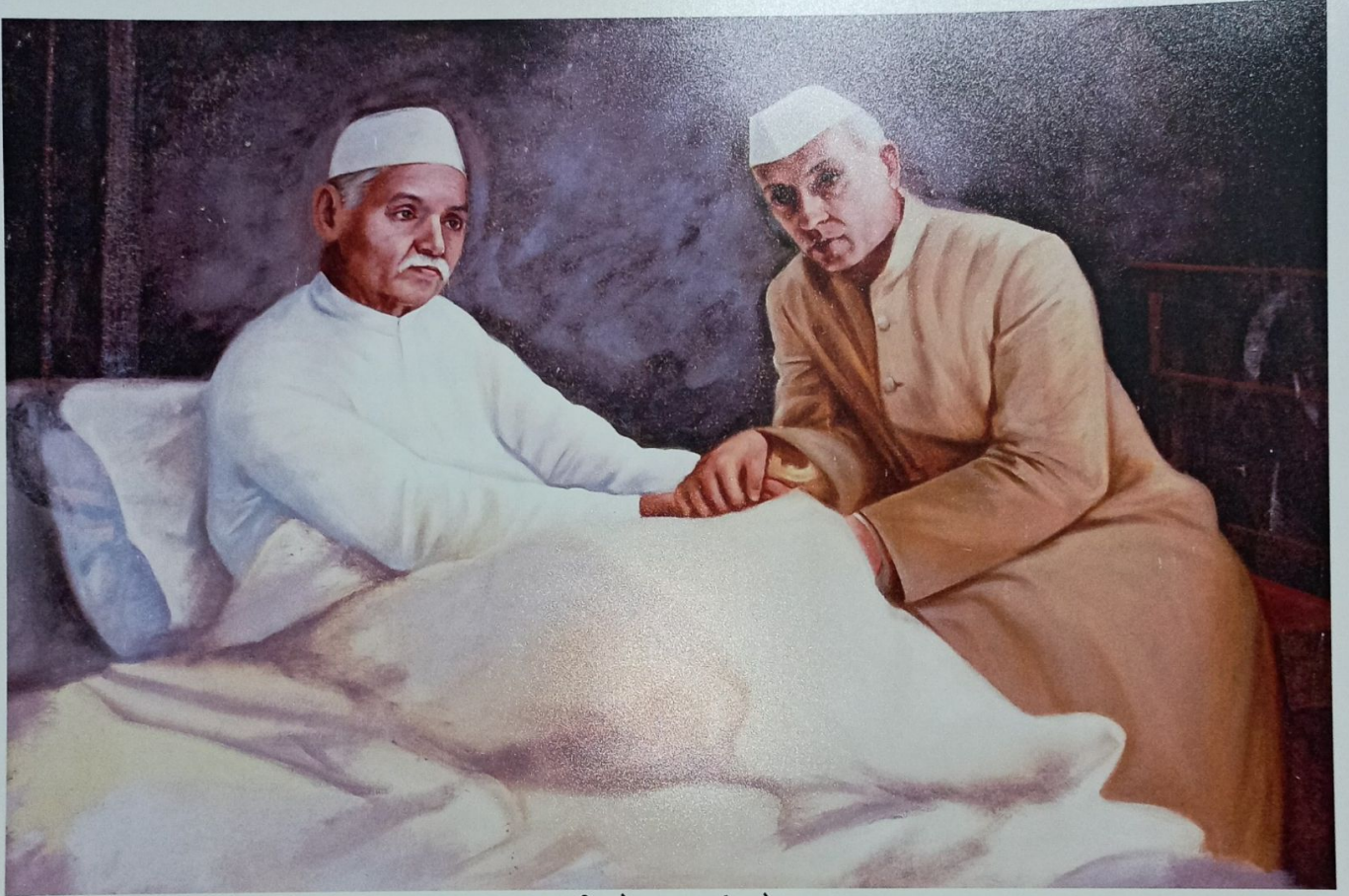


महामना जी के साथ महात्मा गांधी

भारत-रत्न महामना पं० मदन मोहन
मालवीय जी के साथ महात्मा गाँधी



भारत-रत्न महामना पं० मदन मोहन
मालवीय जी का चित्र



महामना जी के साथ पं० नेहरू

भारत-रत्न महामना पं० मदन मोहन
मालवीय जी के साथ पं० नेहरू



भारत-रत्न महामना पं० मदन मोहन
मालवीय जी का चित्र



भारत-रत्न महामना पं० मदन मोहन
मालवीय जी का चित्र

हिन्दी में

१. सत्येन ब्रह्मचर्येण व्यायामेनाथ विद्यया ।

देशभक्त्यात्मत्यागेन सम्मानार्हः सदा भव ॥

सत्य बोले, ब्रह्मचर्य का पालन करें, व्यायाम करे, विद्या पढ़े, देश—सेवा कर और लोक में सम्मान प्राप्त करें।

२. युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु ।

युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा ॥

सभी बातों में संयम सीखो। वाणी में संयम, भोजन में संयम रखो और अपने सभी कार्यों में शीलवान् बनो। शील ही से मनुष्य मनुष्य बनता है। शील परम् भूषणम्। शील ही पुरुष का सबसे उत्तम भूषण है।

३. “तास्तु वाचः सभायोग्या याश्चित्ताकर्षणक्षमाः ।

स्वेषां परेषां विदुषां विद्विषामद्विषामपि ॥”

जिस वाणी से सभा अपनी ओर आकृष्ट हो जाय। अपना, पराया, मित्र, शत्रु, विद्वान् और मूर्ख जिस वाणी से प्रसन्न हो वही वाणी वाणी है।

४. “न त्वहं कामये राज्यं न स्वर्गं ना पुनर्भवम् ।

कामये दुःखतप्तानां प्राणिनामार्तिनाशनम् ॥”

मैं राज की कामना नहीं करता, स्वर्ग भी मुझे नहीं चाहिए, मुझे तो दुःख से जलते हुए प्राणियों के दुःखनाश की ही इच्छा है।

महामना जी को प्रिय सुभाषित

५. “कोऽनु स स्यादुपायोऽत्र येनाहं दुखितात्मनां ।

अन्तःप्रविश्य भूतानां भवेय दुःखभाक् सदा ॥”

“वह कौन सा उपाय है जिसके द्वारा मैं दुःखी जनों के अन्तःकरण में प्रवेश कर उनके दुःख से दुःखी होऊँ।”

६. स्मर्तव्यः सततं विष्णुर्विस्मर्तव्यो न जातु चित् ।

सर्वे विधिनिषेधाः स्युरेतयोरेव किंकराः ॥

ईश्वर को सदैव स्मरण रखना चाहिए। उसे कभी न भुलाओ। सभी धार्मिक आदेशों तथा निषेधों का इन्हीं दो वाक्यों से पालन हो जाता है।

७. गीता के लिए कहा है—

सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपालनन्दनः ।

पार्थो वत्सः सुधीर्भोक्ता दुग्धं गीताऽमृतं महत् ॥

अर्थात् सब उपनिषद् तो गौ हैं, उनको दुहने वाले गोपालनन्दन कृष्ण हैं, अर्जुन बछड़े हैं, बुद्धिमान लोग दूध पीने वाले हैं, और गीता ही अमृतमय दुग्ध है। इसके अध्ययन और पठन का भी बड़ा महत्व बताया है।

८. जीवन का उन्नत बनाने के लिए उनका एक छोटा उपदेश था —

“घट घट व्यापक राम जप रे ।

मत कर बैर, झूठ मत भाखै,

मत पर धन हर, मत मद चाखै ।

जीव मत मार, जुआ मत खेलै,

मत पर तिय लख, यही तेरो तप रे ।”

हिन्दी में

1. 'विपत्ति में धैर्य, सम्पत्ति में क्षमा, सभा में वाक्पटुता, युद्ध में पराक्रम, यश में रूचि और शास्त्र सुनने में सुरुचि ये गुण महात्माओं में स्वभाव से ही होते हैं।'
— मालवीय जी
2. हम धर्म को चरित्र-निर्माण का सीधा मार्ग और सांसारिक सुख का सच्चा द्वार समझते हैं। हम देश-भक्ति को सर्वोत्तम शक्ति मानते हैं जो मनुष्य को उच्चकोटि की निःस्वार्थ सेवा करने की ओर प्रवृत्त करती है।
3. हृदय को पवित्र बना लो, मन को निर्मल बना लो, संसार में जहाँ जाओगे मान के अधिकारी होंगे।
4. यह शरीर परमात्मा का मन्दिर है। ईश्वर को सदैव अपने भीतर अनुभव करो और इस मन्दिर को कभी अपवित्र न होने दो।
5. आह्निक (डायरी) लिखने से मनुष्य को उन्नति में बहुत सहायता मिलती है। डायरी में अपना हृदय खोलकर रख दो।
6. इस विश्वविद्यालय में केवल विद्या ही पढ़ना नहीं है, इसके साथ-साथ चरित्र बनाना भी है। ज्ञान और चरित्र दोनों का मेल कर देने से संसार में मान होगा तथा गौरव प्राप्त होगा।
7. जब आपका देश आपसे किसी प्रकार की सहायता मांगे उसे समय आपको अपने कर्तव्य की पूर्ति के लिए सदैव प्रस्तुत रहना चाहिए। अपने देशवासियों से प्रेम करो तथा उनमें एकता का विकास करो।
8. पढ़ते समय सारी दुनिया को एक ओर रख दो और पुस्तकों में, लेखक की विचारधारा में डूब जाओ, यही तुम्हारी उपासना है और यही तुम्हारी पूजा है।

9. सभी कार्यों में शीलवान् बनो। शील से ही मनुष्य, मनुष्य बनता है।
शीलं परमं भूषणम् शील ही पुरुष का सबसे उत्तम भूषण है।
10. अपने विश्वास में दृढ़ता, दूसरे की निन्दा का त्याग, मतभेद में सहन-शीलता (चाहे वह धर्म-सम्बन्धी हो या लोक-सम्बन्धी) और प्राणिमात्र से मित्रता रखनी चाहिए।

ETHICS FOR STUDENTS FROM MAHAMANA MALAVIYAJI

10 सितम्बर 1935, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के शिवाजी हॉल में विद्यार्थियों और अध्यापकों की विशाल सभा में भाषण देते हुए पूज्य मालवीय जी ने कहा –

“यह शरीर परमात्मा का मंदिर है। इसमें ईश्वर का निवास है। सदैव उसको अपने भीतर अनुभव करो और इस मंदिर को कभी अपवित्र न होने दो। इस मंदिर को अपवित्र बना देने वाली कुछ बातें हैं जिनसे सदा बचो। भूल कर भी, स्वप्न में भी असत्य मुँह से न निकलें—इसकी कोशिश बराबर करो। यदि कहीं भूल से झूठ निकल जाय तो उसे डायरी में नोट कर लो और भगवान् से उस असत्य के लिए प्रार्थना करो, क्षमा माँगो, सच्चे और पवित्र हृदय से उसके चरणों में गिरो और पुनः असत्य न बोलने का व्रत लो। उसे अपना प्राण देकर भी पालो।

इस पवित्र मंदिर का रक्षक ब्रह्मचर्य है। ब्रह्मचर्य ही हमें वह आत्मबल देता है जिसके द्वारा हम संसार को जीत सकते हैं। ब्रह्मचर्य ही की यह महत्ता है कि मेघनाद को परास्त करने के लिए लक्ष्मण जैसा ब्रह्मचारी चुना गया। अर्जुन ने भी ब्रह्मचर्य के बल जयद्रथ को हराया था। महावीर, भीष्म, अर्जुन, लक्ष्मण, शंकर ब्रह्मचर्य की मूर्ति हैं। हम ब्रह्मचर्य के द्वारा अपने भीतर वह विद्युत् शक्ति भर सकते हैं जिसे प्राप्त कर हम विश्वविजयी बन सकते हैं। लक्ष्मण और अर्जुन को सदा ध्यान में रखो। ब्रह्मचर्य के पालन करने में उनका स्मरण बड़ी सहायता देगा। भारतवर्ष का मस्तक इन्हीं ब्रह्मचारियों ने ही ऊँचा रखा है और आज इसकी रक्षा का भार तुम्हारे सिर पर है। महापुरुषों के चित्र अपने कमरे में लगा लो और उन्हीं के उपदेश और आचरण पर अपने मन को जमाओ। हृदय को कभी कलुषित न होने दो। मन को सदा प्रफुल्ल और उल्लसित रखो। तुम लोग धर्म के सैनिक हो, धर्म की रक्षा के लिए सरस्वती के सैनिक हो। सैनिक का आदर्श अपने सामने रखो। प्रातःकाल 5 बजे के पूर्व अवश्य विस्तर छोड़ दो और नित्यकर्मादि से निवृत्त होकर एकान्त में भगवान् से प्रार्थना करो।

आह्निक (डायरी) लिखने से मनुष्य को उन्नति में बहुत सहायता मिलती है। संसार के अनेक महापुरुषों के चरित्र में यह पाओगे कि वे अपनी दुर्बलता को डायरी में नोट करते जाते थे और उसे दूर करने के लिए भी अथक प्रयत्न करते जाते थे। डायरी में अपना हृदय खोल कर रख दो। यहाँ अपने सम्मुख भगवान् को समझकर अपनी बुराइयों, दोषों, अपराधों के लिए पश्चाताप करो और परमात्मा से

1

महामना का विद्यार्थियों को नैतिक
सन्देश

क्षमा मांगो। तुम्हारे जीवन को पवित्र, सुखी, नियमयुक्त बनाने के लिए गीता का यह श्लोक बहुत लाभदायक सिद्ध होगा—

युक्ताहारविहारस्य, युक्तचेष्टस्य कर्मसु ।

युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा ॥

सभी बातों में संयम सीखो। वाणी में संयम, भोजन में संयम रखो और अपने सभी कर्मों में शीलवान बनो। शील ही से मनुष्य मनुष्य बनता है। शीलं परम भूषणम् । Manner Make the man- शील ही पुरुष का सबसे उत्तम भूषण है। Pure conduct is the best ornament.

कठोर काम में अनवरत लगे रहने का अभ्यास डालो। पढ़ते समय सारी दुनियां को एक ओर रख दो और पुस्तकों में, लेखक की विचारधारा में डूब जाओ—यही तुम्हारी समाधि है, यही तुम्हारी उपासना है, यही तुम्हारी पूजा है। "work is worship" का मोटो कमरे में लगा लो। कठिन परिश्रम करना सीखो। खूब गढ़ कर, जम कर मेहनत करो और अपने उच्च और पवित्र आदर्श को कभी न भूलो। शास्त्र और शस्त्र, बुद्धि—बल और बाहु—बल दोनों का उपार्जन करो। सादा जीवन और उच्च विचार का आदर्श न भूलो। हिन्दू विश्वविद्यालय की संस्थापना तुम्हारे भीतर शारीरिक बल के साथ धर्म की ज्योति और ज्ञान का बल भरने के लिए हुई है इसे सदैव स्मरण रखो। स्त्री—जाति का सदा आदर करो। जो बड़ी हैं, उसे माता के समान देखो। जो बराबर हैं उन्हें बहिन के समान और जो छोटी हैं उसे पुत्री के समान देखो। उनके प्रति कभी कोई रूखापन या अपराध न करो।

हिन्दू विश्वविद्यालय की यह फैली हुई भूमि, हरी मखमली दूब से भरे सुहावने बड़े—बड़े खेल के मैदान, स्वच्छन्द उन्मुक्त वायु, माँ पतितपावनी गंगा का पुनीत पावन तट, संसार में कहीं भी ऐसा दूसरा स्थान तुम्हारे लिए नहीं। प्रकृति के साथ जीवन को मेल में लाने वाला, इतना विशाल क्षेत्र संसार में अन्यत्र है तो मुझे मालूम नहीं। यहां के पवित्र वातावरण से हृदय को पवित्र बना लो, मन को विमल बना लो, आत्मा को शुद्ध कर लो, संसार में जहाँ जाओगे, वहाँ मान के अधिकारी होओगे।"

हिन्दू विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों के लिए दिये गये थे उपदेश समस्त विद्यार्थी—जगत् के लिए लाभप्रद हैं। आशा है विद्यार्थी समाज इससे लाभ उठायेगा।

विद्यार्थियों के लिए उपदेश

दो बातों पर ध्यान देना अति आवश्यक है—'युक्ताहार और युक्तविहार आहार' को ही हम पहले लेते हैं क्योंकि विद्यार्थियों में 90 फीसदी को कब्जियत की शिकायत है—

1. भोजन सादा और पुष्टिकारक हो।
2. मसाला, तेल, मिर्ची और खटाई को त्याज्य माना जाय।
3. भोजन में दूध, मक्खन और फलों का विशेष अंश हो।
4. फल ताजे और तरकारी हरी हो। दूध ताजा और शुद्ध हो।
5. आटा चोकर मिला हुआ हो, रोटी मोटी हो।
6. प्रातःकाल स्नान संध्यादि के उपरान्त दूध से ही दिन प्रारम्भ हो और रात्रि समय सोने के पहले दूध से ही समाप्त किया जाय।
7. भोजन खूब चबा-चबा कर देर तक करना चाहिये और भोजन करते समय जल बहुत कम पीया जाय।
8. भोजन समाप्त कर थोड़ा सा दही (तक्र) पीना बहुत ही लाभदायक होगा।

श्रीः

पुष्प

२६.२.०७.

प्रिय महावीर पुसाद जी,

पुष्पम. आप के दोनो हवा
पत्र और दो लेख एक आपका. दूसरा
बा. मिश्रीनाल गुप्त का पहुँचा. मैं सब
तक स्वीकार पत्र नहीं लिख सका. इस
को हमारा कीजियेगा. मैंने पहिला पत्र
अपने हाथ से नहीं लिखा. इसको भी
हमारा कीजिये. कार्य बाहुव्य और क्रम.
पूर्वक काम न करने के दुर्भावस के कारण
मुझ को अब प्रायः अपने अति सम्मानित
मित्रों को भी दूसरे के हाथ से लिखकर
पत्र भेजना पड़ता है किन्तु जैसा अनुग्रह

आप तथा और सम्मानित मित्र मुझ पर देते
हैं और मेरे हार्दिक भाव को जानकर मुझ
को क्षमा कर देते हैं. इस से मैं इस प्रकार
मे काम नमाने को पत्र लिखना कर भेजे.
देता हूँ. मैं आशा करता हूँ कि आप इस
से वस्तुतः यह कभी न ध्यान करेंगे कि
मैं ऐसा मूर्ख या संकुचित हृदय हूँ कि
आपके सुयोग का उचित आदा नहीं करता
आपने मेरे हेतु पत्र पर भी कृपाकर
सुंदर प्रार्थित सहायता देना स्वीकार किया
इसके लिये मैं हृदय से धन्यवाद करता
हूँ. मैं ही प्रार्थना है कि जहाँ तक संभव
हो आप प्रति सप्ताह एक लेख प्रभुदय
के लिये भेजिये. मैं आशा करता हूँ कि

भारत-रत्न पं० मदन मोहन मालवीय जी
का हस्तलिखित पत्र

आप इसको स्वीकार करेंगे। हिन्दी भाषा में इस ज्ञान में एक प्रति-
 स्ठित साप्ताहिक पत्र स्थापन करने की निरन्तर से आवश्यकता
 चली आती है जिसमें विद्वान विचारवान प्रमुख संपन्न देश हि
 तैकी सज्जनों के लेख हों। और जिसके लिखने का ऐसे सज्जनों को
 उत्साह हो। ऐसे पत्र का बनाना आपको भी उतना ही इच्छा और प्रिय
 होगा जितना मुझे है। किंतु इस कार्य में बहुत-जितनी सहा-
 यता आप कर सकते हैं उतनी मैं नहीं कर सकता। मैंने बहुत से
 और कार्यों की चिन्ता और बोध होने पर भी साहस करके पत्र को जारी
 कर दिया है। इस को देशरहित के लिये काम में लाना और जारी

देने के योग्य करना आप तथा अन्य देशरहितों की चिन्तों का कर्तव्य
 है। और आप ही लोगों की सहायता पर निर्भर है।

यद्यपि अभी यह साहस और आवश्यक साहस मालूम होगा तथापि
 मेरी यह इच्छा है कि मैं 'अभ्युदय' में लेखों की कुछ कोशिश करने का
 काम जारी करूँ। ऐसे लेखक अभी बहुत कम हैं जिनके लेखों के
 लिये कुछ भेंट करना पुनासिद्ध होगा। और पत्र की वर्तमान अवस्था
 में कुछ देने के योग्य भेंट करना कठिन भी होगा। किंतु प्रत्याशा:
 'श्रीमदत्तः' इस नाम से मैं चाहता हूँ कि उन लेखों के लिये जे। आप
 के प्रेरक काल की 'त्रिपा' के हप्तान आदि सहित पत्र में लिये योग्य कुछ
 पत्र पुरा प्रेषण किया जाय। कृपाकर इस विषय में आपकी संपत्ति निश्चिन्ने

भारत-रत्न पं० मदन मोहन मालवीय जी
 का हस्तलिखित पत्र

प्रेरक विचार है कि अभी (2) स्वाहमण
 कालम से प्रारंभ किया जाय. और जो 2 पत्र
 को प्रथम संबंधी अवस्था में ही होती जाय
 त्यों 2 प्रेरक की रूढ़ बढ़ाई जाय। इससे
 किसी योग्य पत्र को कुछ व्याज करने के
 नायक प्रायः ही तो होती नहीं किन्तु
 इससे एक ऐसा क्रम प्रारंभ हो जायगा
 कि जिससे जो पत्र पत्र के बनाने और
 बढ़ाने से सहकर होंगे वे आगे चलकर
 देश दिन और मान भाषा के दिन सधन
 के संतोष के अनिच्छित, पत्र के नाम से
 कुछ कार्थिक लाभ उठाने का भी संतोष
 अनुभव करेंगे। मुझे आशा और विश्वास

है कि यदि आप तथा दो तीन और पत्र
 जिनको मैं लिख रहा हूँ; पत्र को पूर्ण
 सहायता देंगे तो अचिर काल में एक
 आठ दस हजार ग्राहक हो जावेंगे।

विशेष आपको लिखना आवश्यक नहीं।
 मैं आशा और विश्वास करता हूँ कि प्रथम
 जिन भाव से मैं इस पत्र को लिख
 रहा हूँ उसी भाव से आप इसके विचार
 करेंगे। और प्रति सप्ताह एक बा दो
 लेख से सहायता करेंगे।

मैंने विधवा विवाह का भाग इसलिये
 निकाल दिया था कि उसमें आपका मत
 नहीं प्रकटित था और इससे लेख सर्वजन
 छिप न सके। मैं आशा करता हूँ साथ ही
 सभ्यजन न डरे होंगे।

डा. मिथी लाल के लेख के विषय में कल लिखेंगे।

भवदीप

मदन मोहन मालवीय



अमृत अथवा विषमयुग।

उत्तमं जागत्यं केनचिं भूतिकर्मिणु । अतिथितोत्येव मत्र । दन्म सतत प्रयत्नैः ॥

मदन मोहन मालवीय

भाग २५

प्रयाग, बुधवार तारीख ५ अगस्त, १९३१ ई०

संख्या २५

प० मालवीय जी की विलायतयात्रा काशी विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों को उपदेश हत्या-काण्ड से देश की क्षति हो रही है

काशी में, पूजा-समय की के विलायत यात्रा के दिने प्रत्याग करने के अवसर पर काशी विश्व विद्यालय के प्रभारकों तथा विद्यार्थियों ने आदर मन्त्रि ने अपना सम्मान प्राप्त किया। इस अवसर पर काशी विश्व विद्यालय के अधिकाधिक विद्यार्थी सम्मिलित थे, जिनमें विद्यालय और अध्यापक भी थे।

पंडित जी ने इसका उत्तर देते हुए कहा—यह कुछ दिनों में भारत का महत्वपूर्ण संदेश देकर इंग्लैंड का भ्रमण है। भारत में अधिकाधिक क्रान्तिवादी के कारण काशी विश्वविद्यालय को रोक दिया है। अध्यापक देशों के सम्मुख अपना सम्मान प्राप्त कर लिया है। इस कारण उत्तरांचल की हत्या-काण्ड को गलत करने के दिने विद्यार्थी का रहे हैं। इसकी क्षति के दो प्रकार हैं। एक शिक्षाकाण्ड और दूसरा अधिकाधिक। मुझे अपने २० वर्षों का अनुभव बताना है कि दोषों का कारण अधिकाधिक का है। दूसरे दिने उत्तरांचल और अधिकाधिक का है।

क्योंकि यह पंडित जी ने कहा—यह एक सम्मान प्राप्त और विद्यालय को रोक कर दिया है।

धर्म के सम्बन्ध में मुझे कोई विचार-विचार नहीं। धर्म ऐसी चीज नहीं जो विदेश यात्रा से नष्ट हो जाय। धर्म विरहा है कि भारत का सामना न्याय और इमानदारी पर अवलंबित है, इसलिये उसे सफलता प्रदरय मिलेगी और अंततः सरकार में सम्मति को सुनेगी और यदि नहीं तो फलतः देश में बड़ा तहलका मच जायगा, जिसका प्रभाव भारत और ब्रिटेन दोनों के लिए सफल होगा।

पंडित जी ने क्रान्तिवादी के हत्याकाण्ड को भीषण विन्दा की। उन्होंने बतलाया यह हत्याकाण्ड देश के लिये अत्यन्त हासिल है। ऐसे कारणों से कुछ काम नहीं हो सकता। किसी भी चीज की विन्दा करना नष्टा पाप और धर्म के विरुद्ध है।

उन्होंने विद्यार्थियों को सम्मति दो कि उनकी बहुसंख्यिका में संघम से रहे ताकि देश के बाहर उनके दिने उत्तरांचल और धर्म को कोई बाधा न लगय हो।

—यह। भारत को सतत देश में सर्वोप को सम्मान की बात बताना शिक्षक की नहीं बसाई गई।

—"मो देस" के सम्बन्ध में काशी की की सम्मान यात्रा के सम्बन्ध में यह सूचना मिली है कि महामना जी १२ अगस्त को इन्डियन के दिने राया हो जायेंगे। यदि वहाँ उन्हें यह मालूम होगा कि विदेश सरकार भारतीय समस्याओं को हल करने को सचमुच उत्सुक है तब वे गोबिन्द परिवर् के लक्ष्य होने तक वहाँ रुकेंगे, किन्तु जब उन्हें उत्तमं जागत्यं काशी की तब वे भारत के दिने बौद्धिक यात्रा से राया हो जायेंगे।

—अर्थ का समाचार है कि वहाँ ने समाचार पत्रों के छोड़ो भारत की से अपने देश के भीषण प्राप्त करने लग गये हैं। उनका यह हर विरहा है कि अंग्रेजी भारत दिने हुए महामना काशी का दिने जेना हुए कीसरी सम्मानों में लक्ष्ये तथा महान्ता प्राप्त होगा।

—भूत-प्रेत के एक कोष में सम्बन्धित पर जी, वृत्त के एक सुख-समाप्त की वार्ता की सूचना पर जाना दे रहा वा वार्ता से प्रभाव हुआ। सम्बन्धित के वार्ता प्राप्त की वार्ता विरहा हर गई है। सम्बन्धित कोष जीव है।

Scanned by CamScanner

महामना मालवीय जी द्वारा स्थापित
समाचार पत्र अभ्युदय की प्रति

Pandit Malaviya's Convocation Address

This is the second Convocation of the Benares Hindu University. The first feeling that rises uppermost in my heart- and I am sure the same feeling would also rise in the hearts of all those connected with this University is a feeling of supreme thankfulness to the Almighty, from whom flow all blessings, that we have reached a stage when we are celebrating the Second Anniversary of our University. It was in the year 1904 in this city under the presidentship of His Highness the Maharajah of Benares that the scheme of the Hindu University was first propounded. In the year 1905 the scheme was put in the form of a prospectus, and on the 31st of December 1905, the year in which the Indian National Congress was held here, a number of distinguished men from all parts of India met in the Town Hall to express their opinions on it and the scheme received their general approval. It was pushed on for a while, but owing to one reason or another its commencement was delayed till the year 1910. Much preliminary work had to be done before the scheme could be properly launched. In the year in which His Majesty the King-Emperor was to visit India, the proposal was re-published and another prospectus was issued to show why the Hindu University was wanted and what it aimed at. The first prospectus had clearly indicated why it was wanted, but some vital changes were necessary. When the scheme was taken up in the year 1911 it met with great support. A number of Princes and other donors promised generous help to it. Promises of donations of 25 lacs were secured. and then the Government was approached, and thanks to the Government of Lord Hardinge and to the keen

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के द्वितीय
दीक्षांत समारोह में महामना मालवीय जी
का संबोधन

interest which His Lordship took in the scheme, and thanks also to the support of Sir Harcourt Butler, the then Member for Education, it was settled before long that Government would pass an Act to incorporate the Benares Hindu University. Subscriptions began to flow in greater measure. Over 50 lacs had been subscribed when on the 1st October 1915, the Benares Hindu University Act received the assent of the Governor-General of India. In the year 1917 the Government permitted us to start work on these very premises.

In the meantime a magnificent site, two miles long and one mile broad, has been acquired at Nagwa which has cost us nearly 6 lakhs, and buildings are rapidly rising upon it. The College of Arts, the Physical Laboratory and the Chemical Laboratory are superintended and guided by Mr. King, the Principal. We have arrived at such a stage in the construction of the buildings that we will have to make a move in July next or at latest in January 1921. In the mean-time we will have the great honour and pleasure of welcoming His Royal Highness the Prince of Wales in our midst and the Council of the University has decided to send a respectful invitation to His Royal Highness. In the meantime a great deal has to be done and much more money is needed. It has been said that in order to push forward and promote the objects of the scheme we should pay more attention to the foundation of chairs and not devote all our funds to building work. Let me assure you all that that has not been overlooked by the University authorities. On the one side we have taken care to hurry up such buildings as are necessary in order that we could move on to the new site. At this stage what is wanted is that we should get much more support from all our donors and I hope everyone interested in the University will help us to realize the money that is necessary in order to complete our object. It is also necessary to bear in mind that we are at a very important period in the

history of our country and of the University. We have to bear in mind that apart from the programme which we first sketched out, i.e., the constitution of a faculty of agriculture, the faculty of commerce, of medicine, of music, of fine arts, etc., we require much more money in order to have a library a worthy of the University. We require to have museum which will enable our student to study the various branches of learning which they have to pursue here. We require to build a temple and more hostels to accommodate the increasing number of students who are coming to the Benares Hindu University from different parts. In all these matters you cannot make sufficient progress without money, and therefore I hope you will agree with me that our first necessity at this stage is to get together whatever money is necessary to put the University on a satisfactory footing by the time we have the honour and pleasure of welcoming our Royal guest.

We are entering upon a new era in the history of our country. You all know the Gracious Proclamation which His Majesty the King-Emperor has sent to us. You also know the Reform Act has been passed. The Act may have been passed but the signing of the Royal Proclamation is of even special importance to which I shall draw you attention. The sentiment which His Majesty expressed when he was leaving India on the occasion of his last visit was a message of hope. That message has been realized and you have now in the Gracious Proclamation the promise of full responsible government in the fullness of time. You have in that Proclamation expressions of His Majesty's sincere desire that the people of India should take their proper place in the scale of nations. You have in that Proclamation the command to us all to co-operate with every one to make the Reforms Act a success.

The most important question with which we are concerned is the question of education. You all know that education is going to be a transferred subject, not merely primary and secondary education, but even University education will be a transferred subject. You all know the tremendous opportunities it gives us to promote the cause of education, which is dear to us all, in the best way we can. We have long been complaining that education has not been adequately provided for. We have long desired a great deal more to be done. The duties and responsibilities of trying to do what we have asked our fellow-subjects in the Government service to do, is now cast upon us. We have to survey the situation and to see how and in what way the University will be affected by it.

There is also another important event which affects the situation and that is the report of the Calcutta University Commission. At this important juncture when education is going to be transferred to ministers elected by the people and responsible to the Legislature, the Calcutta University Commission have published their report. That report is the result of several years of close study and these recommendations are receiving the attention of various Provincial Governments. I think it is not possible to have a full survey of the recommendations at present but I will draw your attention to one or two important recommendations which are vital, because they affect our own work here. You know that one of the most important recommendations of the Commission is that the First Arts or F. A. classes should be cut out from the rest of the college and constituted into intermediate colleges, and that the courses for the degree should be limited to three years with honours and pass courses. Students who pass with honours are permitted to appear as special cases for the M.A. degree in the course of a year. These two points will make a very vital change in the

position of the Colleges and the Universities. There is a difference of opinion as to which course will be the proper course but there is unanimity of opinion that the F. A. classes should be separated from the University proper. But difference arises on the question whether these classes should be constituted into separate intermediate colleges or whether these classes should be added to the high schools.

Now gentlemen, it would be venturesome on my part to express any opinion off hand on matters which have received the consideration of such distinguished educationists as Sir Michael Sadler and our own distinguished countryman, Sir Asutosh Mukherji. There were also other educationists like Dr. Ziauddin Ahmad, Mr. Hornill and others, who were very competent to deal with the question. But it seems to us that the matter is of such vital importance likely to affect the work of all Universities, that the proper course would be to call for a conference of expert educationists who can speak with personal knowledge and experience, to consider what would be the best course to adopt. I have myself discussed the matter with many of my colleagues and others and there is a great deal of opinion against the view that intermediate colleges should be constituted separately.

It is urged that we should boldly deal with the problem of education as a whole, and not merely in part. If we approach the question in that way the first point for consideration would be, what the Commission have indicated, *viz.*, the question of the medium of instruction. I am happy to think that the Commission has recommended that the mother-tongue should be the medium of instruction in the schools. They have also recommended that in the intermediate colleges and the University the medium of instruction should be English. To these recommendations I would make a little modification. I think the time has come when the vernacular should be the

medium of instruction not merely in the schools but throughout the University and even higher stages. I am fully aware that our vernacular does not at present possess a vigorous literature to enable us to teach all subjects in the vernacular. But that want will not be made up by our postponing the beginning of the work in this direction. That want will be removed only if we clearly define to ourselves what is the aim which we have in view and what is the policy which we are going to achieve. There is no civilized country that does not employ the mother-tongue of the people for imparting instruction, higher as well as elementary. Why should we continue to be singular in that respect? That is one of the matters which require consideration as to whether even in the colleges and Universities the medium of instruction should be in the vernacular. You have to consider the problem from the top downwards. Because English is the medium of instruction our educationists have to employ their time and thought from an early period to determine at what stage the teaching of English should be begun. That vitiates the position. If from the outset the Government and the public make up their mind that the vernacular shall be employed wherever it may be practicable, and that efforts should be made to remove the want of suitable books, which is no doubt a very serious consideration, then, I say the question of elementary education and of the position of English in the middle schools will be better solved than otherwise. In advocating a change let not anybody think that we are not grateful to the English language. I am sure we all are deeply grateful for the benefits which our countrymen have received for the last several decades as the result of that education. It is the result of that education which enable us to breathe national sentiments and which have widened our outlook. Let us therefore gratefully acknowledge the debt that we owe to the present system of education. Let us at the same

time discriminate between our duty to the past and to the future. We have had disadvantages also from the system being pursued. In this matter the fault lies more with us than with the Government and I am sorry to think that not many of us have realized the responsibility to our own people in translating works from other languages from the benefit of those who have not received English education. I am not forgetting that in some provinces, especially in Bengal, remarkable progress has been made in this direction. In these provinces also the progress made in Urdu and Hindi is great. But I feel that it is like a drop in the ocean compared with what remains to be done.

The next question is : What is the extent of primary and secondary education to be given to our people? I feel we ought to do what Germany did many years ago, what Japan did in more recent years, what America and France had done for many years, and what England has been slowly awakening to do in recent years. England did not go in for a thorough system of education for a long time, but now our English friends have recognized the need to put secondary education on a thorough footing. The Education Act of 1918 is the outcome of that feeling. What I ask is that here too the course of primary and secondary instruction up to the age of 14 should be one which will not concern itself merely with the Three Rs. It is an absurd course in view of the progress achieved. We should have a good course which will enable our boys to know something of the things which they ought to know. The next question will be what will be the duration of the next stage. I believe the duration should be from the 14th to the 17th or 18th year. In short the secondary school here should be what the secondary school is in France, Japan and England under the new Act. A lad who goes through the primary course will be qualified to enter upon the secondary course with advantage. At the high school course with advantage. At the high school he

would learn not merely what he has learnt at the earlier stage, but he would also be preparing himself to pursue a career in some direction or another. Then the high school would be a real training ground for life for the great bulk of your young men. Under this system the number of students going up to the college will not be diminished, but on the other hand I expect the number will increase and the money spent on higher education will produce better results. The Calcutta University Commission then recommend that there should be an intermediate college in every district. The result of this will be that many students who thirst after knowledge, who want to qualify themselves for some work, will not have to leave their homes for distant University centres but will remain up to the age of 16 or 18 in their own districts. It will cheapen education to the bulk of our students and improve their qualities.

If then this proposal is worthy of consideration the question is how is it to be decided. Should each University be left to decide the matter for itself? Will that conduce to that unanimity of progress in all provinces that is desired? I say no. The question affects all Universities, and I submit that there should be a Conference where this matter should be discussed. It may be that on consideration this view may be rejected, but personally speaking I do not apprehend that this will be the case. The time has long gone by when merely, arts education would satisfy the needs of the community and in view of the great progress that science has made during the last two centuries, and the tremendous advance that has been made in applied science, I do not think any body will come forward to say that any instruction will be complete and satisfactory which did not provide for instruction in elementary science.

We think it is possible that vernaculars can be made the medium of instruction and it should be our endeavour to prepare ourselves for it at the earliest opportunity. We know the value of English as a language of worldwide utility. It is not suggested that English should be dropped. In a well-organized system of education English should find its proper place. I feel the necessity of our young men learning a foreign language. I do not know any foreign language which can compare in the matter of utility for us with English. For sixty years and more English has been taught in all parts of the country and it is to-day understood by quite a large number of our people. It is also the key to arts and sciences of a very high kind which our vernaculars cannot be for a long time to come. English should be learnt by the direct method as the second language but not as the first language to which years will be devoted for its study and mastery.

I hope that either the Government or some University will call a Conference to consider all these questions and to have them in an off-hand way. We must be prepared to be guided by the opinion of those who have given years of their lives to the teaching of English and the vernacular both in school and college.

If I may offer an invitation we will be glad to welcome friends in the months of March or April to a Conference in Benares. I am sure if we can get together ladies and gentlemen who are interested in education, the discussion will lead to great good. When this has been done the work of the University will be simple. At this stage it is a matter for satisfaction that in almost all matters, speaking generally, the Benares University occupies a favourable position. The recommendations which have been made by the Commission both on the administrative and on the academic side were

forestalled by the organizers of this University. The constitution which Commission has recommended is on the lines of the Hindu University.

Now the question that arises in this respect is how are we going to discharge our duties by carrying on the objects which we have set before us. Here we come again to the question of ways and means. They are of two kinds : men and money, and we need both to build up the University. We should realise the opportunities that this University gives and the responsibilities which it casts upon us. We have a special message to give to the world. At this juncture there is a great deal of stir in the educational world, Europe feels rather doubtful about the wisdom of the course which it has pursued, because it has not prevented the terrible war which has attacked civilization itself. We have our ancient system of education which holds up before you the four objects of Dharma, Artha, Kama, and Moksha. Are we going to profit by it or drop it? These are questions which we have to consider. There is another duty. When we think of the great Universities of Oxford and Cambridge and when we hear people dwelling with pleasure and gratitude on the atmosphere that they have breathed and of the ancient fountains which flow there, what is it that we have to do here? When we read of the love of Frenchmen for their ancient Universities and national institutions, when we read of the Japanese showing so much love for their national treasures, what ideas force themselves upon us! We, the inheritors of a civilization which knew Universities such as Taxilla and Nalanda, what have we to show to the world now? When His Royal Highness honours us with his visit, when we expect many other foreigners, we desire to show what this ancient seat of learning has done. Benares goes back long into the past. It is one of the most ancient cities in India. The great Harishchandra lived here and wrote his name for right and truth in indelible characters.

Other great men have come and gone through Kashi, and it was here that Buddha preached his great religion. Now what are the national institutions which you can show in Benares? Where is the national museum where you have preserved your national arts and treasures? Where are the national paintings and national sculptures that you have preserved? I have reminded you of these things with a purpose. I have heard criticism that we are spending money to a large extent on buildings and that we are not doing all that we should do. I would only invite your attention to these ancient Universities and the lessons they have for us. Let us all co-operate wholeheartedly and sincerely in order to build a modern Nalanda and a modern Taxila at Benares. Let us build up this place as the great seat of learning of the Hindus if not of Indians. We have a magnificent site which is two miles long and one mile broad and which can be added to; we have got a Government which is helping us in every way and we have got princes and donors who are willing to support us. If we all join together and look at this question in a broad spirit, if we make up our minds to devote ourselves to the task, I hope we shall soon achieve something for which we shall have reason to be proud. I hope this appeal will find response from every sister and brother whom I see here. It is fortunate that we have in our midst Mrs. Annie Besant. She has laboured long and assiduously to help this College and University. I hope that Europeans and Indians would help to build this great institution in the future. I wish it were possible for me to make you realise and feel as I myself feel that we Hindus have not much reason to feel proud of the part we have played in preserving things which are sacred and dear to us. But let the dead bury its dead. Let us think of the present and make Benares a place of culture for which it was noted in the past. It is for us to build this University so that every inch of this university shall have a

story to tell and a purpose to display. It is not a work which you shall look at merely as spectators standing aside. It is a work to which I invite the whole-hearted co-operation of every one who loves all that was great and glorious in our country. It is possible to build here a place really worthy of the great traditions which we have inherited. I ask you not to despair, but to go forward with the determination that what was done in the ancient past shall be done and done better in the present age. You should all join with the determination to realize the past the better in the present and in the future. If scholars and students come in that spirit and if friends and fellow-men in all parts of the country will help us in that spirit. I do not despair that we shall be able to show the same good work as in the past.

Graduates and those who have received degrees to-day, I appeal to you in particular to consider it your sacred duty to do all that you can to build up what you are entitled to call you Alma Mater. Let it be our dutiful endeavour to build a place for which every Hindu shall feel that he has contributed something-it may be labour, money or thought. Every Hindu should feel it his duty to visit this place at least once in his lifetime. All our adoration for the Rishies who lived in the jungles and sacrificed worldly pleasures for the sake of promoting spiritual culture, demands that we should build this up as a great centre of light and life. I hope you will devote yourselves to the task.